वर्षम् - ०४ अङ्कः – ०४ शोधज्योतिः
जनवरी – दिसम्बर, 2022 ISSN-2350-0700

अद्वैत वेदान्त में अवस्थात्रय विमर्श

डॉ. रीनाकुमारी[१]

भारतीय दर्शन की समस्त पद्धतियों के सिद्धान्तों में शंकराचार्य के अद्वैतवाद का सिद्धान्त मूर्धन्य है। अपने दार्शनिक औचित्य एवं व्यावहारिक महत्त्व के कारण अद्वैतवाद को विश्वदर्शन के क्षेत्र में जो प्रतिष्ठा प्राप्त हुई है, वह किसी अन्य दार्शनिक सिद्धान्त को नहीं। शंकराचार्य ने अपने अद्वैत दर्शन के मूलाधार ब्रह्मसूत्र भाष्य में उपनिषदों, श्रीमद्भगवद्गीता एवं ब्रह्मसूत्र के सिद्धान्तों का जो समन्वय प्रस्तुत किया है, वह अद्वितीय है। यही कारण है कि आचार्य शंकर का अद्वैत दर्शन अपने उद्भवकाल से आज तक दार्शनिक जिज्ञासुओं का आधार स्तम्भ बना हुआ है।

अद्वैत शब्द का अर्थ द्वैतविरोधी एवं भेदरहित तत्त्व है। अद्वैतवेदान्त के अनुसार अद्वैत तत्त्व प्रमाणादि का विषय नहीं है। शंकराचार्य के अद्वैतवाद सिद्धान्त का मूल केन्द्र बिन्दु ब्रह्मतत्त्व है। यही अद्वैत का मूल सिद्धान्त है। अद्वैत वेदान्त में ब्रह्म, ईश्वर, जीव, जगत् एवं मुक्ति विषयक सिद्धान्तों की व्याख्या की गई है। इसी श्रृंखला में अद्वैत वेदान्त में अवस्थात्रय पर विचार-विमर्श किया गया है जो अधोलिखित है-

अद्वैतवेदान्त दर्शन के अध्ययन से ज्ञात होता है कि सर्वप्रथम जीव का अतिसूक्ष्म अन्वेषण गौडपादाचार्य ने माण्डूक्यकारिका में किया है। आचार्य ने जीव की जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति एवं तुरीय अवस्थाएँ बताई है। जाग्रत अवस्था हमारे समस्त व्यावहारिक जीवन का मूल आधार है, जब हम विविध प्रकार के स्वप्न देखते हैं, उसे स्वप्नावस्था कहते हैं। जब हम शान्त तथा गहरी निद्रा में सो जाते है, उसे सुषुप्तावस्था कहते हैं। सुषुप्तावस्था से अधिक शान्त एवं आनन्दमय अवस्था को तुरीय अवस्था कहते है। इस स्थिति में जीव स्वयं का ब्रह्म से अभेद अनुभव करता है। गौडपादाचार्य जाग्रत के ज्ञातृत्व अभिमानी को, विश्व स्वप्न के ज्ञातृत्व अभिमानी को, तेजस तथा सुषुप्ति के ज्ञातृत्व अभिमानी को प्राज्ञ कहते हैं। विश्व, तैजस एवं प्राज्ञ में एक ऐसा तत्त्व निहित है जो तीनों अवस्थाओं में एक रूप बना रहता है तथा उनके अनुभवों की एकता को उत्पन्न करता है। आचार्य गौडपाद ने उपर्युक्त वर्णित तीनों स्वरूप एक ही

[१] *सहायकाचार्या, संस्कृतविभाग, मोतीलाल नेहरू महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, Email id- reenakumariskt3@gmail.com*

आत्मा की अभिव्यक्तियाँ हैं, ऐसा माना है।[२] यही आत्मा अद्वैतज्ञानस्वरूप एवं सर्वव्यापक है।[३] अद्वैत तत्त्व का प्रतिष्ठापन करते हुए आचार्य गौडपाद ने कहा है कि अनादि माया के कारण अज्ञान की निद्रा में सुप्त जीव अज्ञान निवृत्ति होने पर जब प्रबुद्ध होता है, तभी उसे अज, अनिद्र, अस्वप्न तथा अद्वैत तत्त्व का परिज्ञान होता है।[४]

इस प्रकार आचार्य गौडपाद ने जीव की चार अवस्थाएँ मानी हैं,[५] परन्तु कतिपय विद्वान व्यावहारिक दृष्टि से जीव की तीन अवस्थाएँ मानते हैं क्योंकि तुरीय अवस्था में तो जीव शुद्ध चैतन्य रूप ही हो जाता है। अतः वह जीव की अवस्था न होकर ब्रह्म की अवस्था है। कुछ अन्य विद्वान मृत्यु एवं मूर्च्छा को भी अवस्था के रूप में स्वीकार करते हैं। प्रख्यात् पाश्चात्य विद्वान पॉल डायसन ने लिखा है कि एक चौथी अवस्था मृत्यु है, जो देह से उत्क्रमण है, फिर मूर्च्छा है किन्तु वह पाँचवी अवस्था नहीं है क्योंकि यह आकस्मिक एवं असामान्य घटना है जो चिकित्सा शास्त्र में प्रसिद्ध है।[६] मूर्च्छा की तरह 'उन्मनी' भी एक अवस्था है जिसका हठयोग प्रदीपिका में उल्लेख किया गया है।[७] इस अवस्था में शंख एवं दुन्दुभि की आवाज नहीं सुनाई पड़ती है और शरीर भी काष्ठ के समान अकड़ जाता है।

इस प्रकार व्यावहारिक स्तर पर जीव की जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति ये तीन अवस्थाएँ तो निर्विवाद रूप से स्वीकार्य हैं। कतिपय विद्वानों ने ब्रह्म के साथ तादात्म्य रूप तुरीय अवस्था को चौथी अवस्था माना है। मृत्यु को अवस्था के रूप में प्रतिष्ठापित करने की परम्परा अप्रचलित रही है परन्तु ब्रह्मसूत्र पर भाष्य लिखते समय शंकराचार्य ने मूर्च्छा को जीव की अवस्थाओं में परिगणित नहीं किया है क्योंकि उनके मतानुसार मूर्च्छा को अवस्था मानना युक्तिसंगत प्रतीत नहीं होता। उनके अभिमत में शरीरस्थ जीव की तीन अवस्थाएँ तो प्रसिद्ध हैं- जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति परन्तु चतुर्थ अवस्था शरीर से अपसृति है। जीव की कोई पाँचवी अवस्था तो श्रुति एवं स्मृति में भी प्रसिद्ध नहीं है। इसलिए मूर्च्छा इन चार अवस्थाओं में से ही एक अवस्था है। ब्रह्मवेत्ताओं के द्वारा मूर्च्छा को अर्धसुषुप्ति माना गया है।[८] अतः मूर्च्छा की पृथक् रूप से परिगणना करना उचित नहीं है। आचार्य विज्ञानभिक्षु ने जाग्रत, स्वप्न व सुषुप्ति को बुद्धि

---

[२] एक एव त्रिधा स्मृतः। गौ. पा. का 1/1

[३] अद्वैतः सर्वभावानां देवस्तुर्यो विभुः स्मृतः । गौ.पा. का 1/10

[४] अनादिमायया सुप्तो यदा जीवः प्रबुध्यते । अजमनिद्रमस्वप्नद्वैतं बुध्यते तदा। गौ.पा.का 1/16

[५] सोऽयमात्मा चतुष्पात्। माण्डू, उप. आगम प्रकरण, कारिका, 2 पृ. 28

[६] पॉल डायसन, वेदान्त दर्शन (हिन्दी अनुवाद), पृ- 329

[७] शङ्खदुन्दुभिनादं च न शृणोति कदाचन। काष्ठवज्जायते देह उन्मन्यवस्थया ध्रुवम्।। हठयोगप्रदीपिका, 4/106

[८] द्रष्टव्य, ब्रह्मसूत्र शांकरभाष्य, 3/2/10

(अन्तःकरण) की वृत्तियाँ कहा है।[९] योग वसिष्ठ ने इन्हें चेतना के तीन रूप तथा चित्त या मन की वृत्तियाँ कहा है।

जाग्रत् अवस्था- जाग्रत् अवस्था के सम्बन्ध में सुरेश्वराचार्य ने कहा है कि जाग्रत् अवस्था में केवल अज्ञान एवं अन्तःकरण ही नहीं अपितु समस्त ज्ञानेन्द्रियाँ और कर्मेन्द्रियाँ भी स्वाधिष्ठित देवताओं के अनुग्रह से अपने-अपने विषय का ग्रहण करती हैं।[१०] पञ्चदशी में उल्लिखित है कि देवता के अनुग्रह से युक्त इन्द्रियों के विषय का ज्ञान जिसमें होता है उसे अथवा इन्द्रियजन्य ज्ञान और इन्द्रियजन्य ज्ञान के संस्कार के आश्रयभूत काल को जाग्रत कहते है, यही जाग्रत अवस्था है।[११] जाग्रत अवस्था के विषय में आचार्य मधुसूदन सरस्वती ने कहा है कि इन्द्रियों की वृत्ति के समय हुए पदार्थ ज्ञान को 'जागरण' कहते है।[१२] नारायणतीर्थ एवं गौडब्रह्मानन्द सरस्वती के अनुसार इन्द्रियवृत्तिकालीन पदार्थज्ञान से तात्पर्य इन्द्रियजन्य वृत्तियों के समय में उपलब्ध पदार्थज्ञान है।[१३] सिद्धान्तबिन्दु से यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि इन इन्द्रियों का व्यापार इनके अधिष्ठाता देवों के अनुग्रह से ही सम्पन्न हो पाता है।[१४] इनके मतानुसार जागरणकाल में विराट नामक समस्त मूर्त भोग्य विषयों का प्रत्यक्ष, अनुमान इत्यादि प्रमाणषट्क से व्यवहार होने से एतदकालिक जगत् की व्यावहारिकता सिद्ध है। इस व्यावहारिक विश्व का उपभोगकर्ता विश्व नामक जीव हैं। एतद् कालिक जीव की 'विश्व' संज्ञा होने के कारण इसकी सर्वत्र व्यापकता है क्योंकि देह-इन्द्रियादि में प्रवेश करने अथवा व्याप्त करने से वह विश्व कहा जाता है। यद्यपि 'विश्व' प्रत्यक्ष के अतिरिक्त अनुमान तथा शब्दादि प्रमाणों से भी अमूर्त एवं अव्याकृत का भी अनुभव कर सकता है तथापि व्यावहारिक समस्त जगत् ही विश्व द्वारा ज्ञेय है। अद्वैतवेदान्त के इस नियम से स्थूल शरीररूप उपाधि का अभिमानी होने से भी जागरण के अतिरिक्त स्वप्न तथा सुषुप्ति रूप अन्य अवस्थाओं में उसकी व्यापकता स्वीकार नहीं की जाती है।[१५] जागरणकाल में विश्व को समस्त पदार्थों का ज्ञान इन्द्रियवृत्ति के माध्यम से हुआ करता है।

स्वप्नावस्था- शंकराचार्य स्वप्नावस्था को जाग्रदवस्था से विलक्षण मानते हुए उसे स्वयं ज्योति स्वरूप बताते हैं। वे कहते हैं कि इस अवस्था में प्रत्यक् चैतन्य स्वयं ही विशुद्ध ज्योति स्वरूप हो जाता है।[१६]

---

[९] जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तं च गुणतो बुद्धिवृत्तयः।, योग वार्तिक, पृ. 39

[१०] पञ्चीकरण वार्तिक, पृ- 26

[११] पञ्चदशी, 1/3

[१२] इन्द्रियवृत्तिकालीनार्थोपलम्भो जागरणम्। सिद्धान्तबिन्दु पृ- 398

[१३] (क) द्रष्टव्य, नारायणी. पृ. 398. (ख) स्वसमानाधिकरणा या इन्द्रियजन्यवृत्तयः, तत्कालीनोऽर्थोपलम्भ इत्यर्थः। न्यायरत्नावली, पृ. 398

[१४] सर्वेन्द्रियेषु देवतानुग्रहाभावान्निर्व्यापारतया लीनेषु। सिद्धान्तबिन्दु, पृ- 401

[१५] तत्र च मूर्तं.... विश्वाख्येन जीवेनोपभुज्यते । स च देहेन्द्रियादिषु... स्मरणात्। अत्र यद्यपि .....न तस्यावस्थान्तरव्यापकत्वम्। सिद्धान्तबिन्दु, पृ.- 398-400.

[१६] बृहदारण्यक उपनिषद् शांकर भाष्य 1/3/9

जागरण अवस्था का अभिमानी विश्व ही जब स्थूल शरीर के अभिमान को त्यागकर, अविद्या एवं अन्तःकरण स्वरूप दो उपाधियों से युक्त होकर, स्वप्नावस्था का अभिमानी बनता है तब वह 'तैजस' कहलाता है[१७] क्योंकि स्वप्नावस्था में स्थूल शरीर में अभिमान नहीं होता। तैजस का शब्दार्थ है तेजोमय, यद्यपि यह सदैव ही तेजोमय है। तथापि स्वप्न में स्थूल शरीर के अभिमान के त्याग से स्वयंज्योति हो जाता है। यह तैजस की विशेषता कही गई है, क्योंकि तत्काल जागरण अवस्था में भोग उत्पन्न करने वाले कर्मों का क्षय एवं स्वप्नावस्था में भोग कराने वाले कर्मों का उदय होने पर निद्रा नामक तामसीवृत्ति से स्थूल देहाभिमानी के दूर होने पर तथा तत् इन्द्रियों के देवताओं का अनुग्रह न होने के कारण व्यापार रहित इन्द्रियों का विलय हो जाने पर समस्त विश्व का भी लय हो जाता है।[१८] स्वाप्निक भोग्य के उपभोक्ता जीव को 'तैजस' नामक संज्ञा प्रदान करने का प्रमुख कारण या तो उसमें पित्त नामक तेज की प्रधानता होना अथवा सूर्यादि ज्योति के बिना ही सम्पूर्ण पदार्थों का प्रकाशक होता है।[१९] स्वप्नकाल में इन्द्रियवृत्ति का अभाव होने पर भी तात्कालिक अमूर्त भोग्यों का उपयोग तैजस अन्तःकरणगत वासनाओं के द्वारा करता है।[२०]

सुषुप्ति अवस्था- विवेकचूडामणि में आचार्य शंकर सुषुप्ति का अभिप्राय बताते हुए कहते हैं कि जहाँ स्वप्न रहित निद्रा अर्थात् समस्त प्रकार की प्रमितियाँ शान्त हो जाती है एवं बुद्धि जीव रूप में स्थिर रहती है।[२१] बृहदारण्यकोपनिषद् में वर्णित है कि सुषुप्ति में इन्द्रियादि सभी का विलय हो जाता है तथा प्रमातृत्व की निवृत्ति हो जाती है।[२२] माण्डूक्यकारिका में कहा गया है कि जाग्रत एवं स्वप्नावस्था के स्थूलात्मक एवं वासनात्मक भोगों को भोगने के कारण श्रान्त प्राणी जगत् का चिदाभास विशिष्ट अविद्या में विश्रामार्थ अवस्थान सुषुप्ति है।[२३] पञ्चदशी में भी वर्णित है कि सुषुप्ति में प्रत्यक् चैतन्य परमात्मा से एकता अनुभव करने वाला होता है, तब वह न आभ्यन्तर को जानता है और न बाह्य को और इस तरह केवल आनन्द रूप बना रहता है।[२४] मधुसूदन सरस्वती कहते हैं कि "मैं सुख से सोया", "कुछ नहीं जाना", इस प्रकार से कारणात्मनामात्र अज्ञानोपलब्धि को सुषुप्ति कहते हैं।[२५] सुषुप्ति का यह लक्षण न तो प्रलय को अतिव्याप्त

---

[१७] स एव स्थूलशरीरभिमानरहित उपाधिद्वयोपहितः स्वप्नाभिमानी तेजसः।। सिद्धान्तबिन्दु, पृ-371

[१८] एवं जाग्रद्भोगजनककर्मक्षये स्वाप्नभोगजनककर्मोदये च सति निद्राख्ययां तामस्या वृत्त्या स्थूलदेहाभिमाने दूरीकृते सर्वेन्द्रियेषु देवतानुग्रहाभावाद्, निर्व्यापारतया लीनेषु विश्वोऽपि लीन इत्युच्यते । सिद्धान्तबिन्दु, पृ- 400-401

[१९] अत्र च स्वाप्निकपदार्थभोक्ता तैजस इत्युच्यते। पित्ताख्यतेजः प्रधानकत्वात्। सिद्धान्तबिन्दु, पृ- 416

[२०] तत्र चान्तःकरणगतवासनानिमित्त इन्द्रियवृत्त्यभावकालीनोऽर्थोपलम्भः स्वप्नः । सिद्धान्तबिन्दु, पृ. 401

[२१] विवेकचूडामणि. पृ- 123

[२२] बृहदारण्यकोपनिषद्, 3/4/70

[२३] माण्डूक्यकारिका, 1/2

[२४] पञ्चदशी 11/54,58

[२५] न किञ्चिदवेदिषमिति कारणमात्रोपलम्भः सुषुप्तिः। सिद्धान्तबिन्दु, 417

करता है और न ही सृष्टि के लक्षण को क्योंकि प्रलय बेला में अविद्या की कारणात्मना अवस्थिति होने पर भी उसकी वृत्ति नहीं बनती है और सृष्टि बेला में केवल उसकी अज्ञानाकार प्राथमिक वृत्ति ही उत्पन्न हो जाती है। परन्तु सुषुप्ति काल में जाग्रत एवं स्वप्नकालिक भोग्य पदार्थों की अवस्थिति के ज्ञान का अभाव होने पर भी कारणात्मना अवस्थित अविद्या की अज्ञानाकार, सुखाकार तथा साक्ष्याकार ये तीन वृत्तियाँ उपस्थित रहती है। इसलिए सुषुप्ति का कहा गया लक्षण प्रलय तथा सृष्टि के लक्षण को अतिव्याप्त नहीं करता है।[२६] इस विषय में गौडब्रह्मानन्द सरस्वती ने स्पष्ट रूप से बताया है कि सुषुप्ति की अवस्था में अज्ञानाकार संस्कार रूप में जाग्रत, स्वप्न विषयक अनादि जीव, ईश्वरभेद विषयक अवस्था रूप अज्ञान साक्षी के सम्बन्ध से प्रकाशित होता है क्योंकि उस दशा में जाग्रत तथा स्वप्नकालिक भोग्य पदार्थों की स्थिति के ज्ञान का अभाव होने पर भी कारणरूप में अवस्थित अविद्या की अज्ञानाकार, सुखाकार तथा साक्ष्याकार ये तीनों वृत्तियाँ उपस्थित रहती है। अतः मूलाज्ञान के आकार में अविद्यावृत्ति सुषुप्ति में अवश्य विद्यमान रहती है क्योंकि सुषुप्ति से वापस जाग्रत् काल में **एतावत्कालं मूढोऽहमासमिति**, इस प्रकार का अनुभव उस अज्ञान वृत्ति के साक्षात्कार करने वाले साक्षी की सत्ता होने का स्पष्ट प्रमाण है।[२७] सुषुप्ति अवस्था में तो वृत्तियों की उपस्थिति का प्रमाण सुप्तोत्थित पुरुष का **'सुखमहमस्वाप्सम् न किञ्चिदवेदिषम्'** यह स्मरण ज्ञान है। यदि सुषुप्तिकाल में तीन वृत्तियों से युक्त अज्ञान का अनुभव न होता तो सुप्तोत्थित पुरुष को उक्त स्मरण नहीं हो सकता।[२८]

इस प्रकार जाग्रदवस्था एवं स्वप्नावस्था के भोग से परिश्रान्त हुए जीव के उक्त दोनों अवस्थाओं के कारणरूप कर्मों के नष्ट होने पर ज्ञानशक्ति से अवच्छिन्न सवासन अन्तःकरण की कारणरूप अर्थात् कारणीभूत अज्ञानगत संस्काररूप से स्थिति होने पर जीव का विश्राम स्थान सुषुप्ति अवस्था कही गई है।[२९] इस प्रकार उन किञ्चिदवेदिषम् इत्याकारक कारणरूप अज्ञानमात्र की उपलब्धि सुषुप्ति है।

तुरीयावस्था- जाग्रत् आदि तीन अवस्थाओं के अतिरिक्त एक चौथी अवस्था भी मानी गई है जिसे 'तुरीय' अवस्था कहते हैं। यह सबसे भिन्न एवं सबका अधिष्ठान है। उपर्युक्त तीनों अवस्थाएँ मूलतः इसी तुरीय चैतन्य की ही अवस्थाएँ हैं जिनसे वह प्रभावित नहीं होता। शंकराचार्य का कथन है कि तुरीय

---

[२६] तत्र जाग्रत्स्वप्नभोग्यपदार्थज्ञानाभावेऽपि साक्ष्याकारं सुखाकारमवस्थाज्ञानाकारं चाविद्याया वृत्तित्रयमभ्युपेयते । सिद्धान्तबिन्दु ,पृ. - 417-418

[२७] 'न किञ्चिदवेदिषमित्यनेकपदार्थविषयकज्ञानस्मृतेर्मूलाज्ञानेनानुपपत्तेः तस्य चिन्मात्रविषयकत्वात्।..... मूलाज्ञानाकाराप्य-विद्यावृत्तिस्सुषुप्तावश्यं वाच्या। 'एतावत्काल' मूढोऽहमास'मिति नानाविषयाविशेषितरूपेणाप्यज्ञानस्य जागराद्यकाले तत्त्वज्ञानकाले च स्मरणात्। एवञ्च मनोऽवच्छिन्नचितः स्वप्नाधिष्ठानत्वपक्षेऽप्युक्तस्मरणोपपत्तिरिति । न्यायरत्नावली पृ.- 418

[२८] अहङ्काराभावाच्च नैका विशिष्टवृत्तिः, सुषुप्त्यभावप्रसङ्गाच्च । अत एव वृत्तिरूपस्योपलम्भस्याभावान्न प्रलयेऽतिव्याप्तिः। तत्र तत्कल्पनाबीजाभावात्। इह च सुखमहमस्वाप्सं न किञ्चिदवेदिष' मिति सुप्तोत्थितस्य परामर्शात्। सिद्धान्तबिन्दु पृ- 418-420/

[२९] एवं जाग्रत्स्वप्नभोगद्वयेन श्रान्तस्य जीवस्य तदुभयकारणकर्मक्षये ज्ञानशक्त्यवच्छिन्नस्य सवासनस्यान्तः करणस्य कारणात्मनावस्थाने सति विश्रामस्थानं सुषुप्त्यवस्था। सिद्धान्तबिन्दु पृ- 416417

अवस्था की प्राप्ति तीनों अवस्थाओं के एकीकरण द्वारा होती है, फिर भी वह इन तीनों से ऊपर है, व्यापक एवं विभु है।[३०] तुरीय को जाग्रत्, स्वप्न तथा सुषुप्त स्पर्श नहीं करते। जाग्रत में इन्द्रियाँ मन, बुद्धि और अहंकार जिसके प्रकाश से प्रकाशित होते हैं, वह तुरीय है। यह तुरीय ही अद्वैत अपरिच्छिन्न और विभु है। विभु से अभिप्राय है कि वह प्रत्येक देह या शरीर में पृथक्-पृथक् नहीं अपितु सब शरीरों में एक ही है, जो समस्त पदार्थों, भावों, क्रियाओं और स्थितियों में एकरस रहता है। वह परमानन्द स्वरूप एवं सर्वगत है। तुरीयावस्था को मोक्षावस्था भी कहा गया है।

निष्कर्षतः

यह कहा जा सकता है कि अद्वैत वेदान्त में उल्लिखित अवस्थात्रय का जो स्वरूप प्राप्त होता है वह केवल जीव की व्यावहारिक स्तर की अवस्थाएँ हैं क्योंकि जीव, जगत- व्यवहार में इन तीनों अवस्थाओं का अनुकरण करता है। चराचर जगत् में जीव को अपनी चेतना के तीनों रूपों का परिचय प्राप्त होता है, वे हैं जाग्रत, स्वप्न एवं सुषुप्ति, ये तीनों ही अवस्थाएँ जीवन को श्रृंखलाबद्ध करती है इनसे पृथक् जीवन की कल्पना नहीं की जा सकती है। वस्तुतः सांसारिक जीव की जाग्रत, स्वप्नादि तीनों अवस्थाएँ भिन्न-भिन्न नहीं हैं अपितु उनमें एक ही चैतन्य तत्त्व अनुस्यूत है जो अन्तःकरण की वृत्तिरूप उपाधि से विश्व, मनोपाधि से तैजस एवं अविद्या उपाधि से युक्त प्राज्ञ कहलाता है। ये तीनों ही अवस्थाएँ एवं रूप जीव की चौथी अवस्था तुरीय अवस्था के सन्दर्भ में प्रकल्पित की गई हैं। अतः इस प्रकार सम्पूर्ण उपाधियों से रहित चैतन्य की वह विशुद्ध अवस्था तुरीयावस्था है, जो अद्वैत तत्त्व है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची-

1. पञ्चदशी, विद्यारण्य, संस्कृत संस्थान, बरेली 1972
2. पञ्चीकरण वार्तिक
3. बृहदारण्यकोपनिषद्, शांकरभाष्य युक्त, वाणी विलास प्रेस वाराणसी 1892
4. माण्डूक्यकारिका(गौडपादकारिका), गौडपाद, परमाध्यक्ष कैलाश आश्रम ऋषिकेश 1972
5. विवेकचूडामणि, संपादक -मनोहर लाल शर्मा, चितरंजन एवेन्यू, कलकत्ता 1983
6. सिद्धान्तबिंदु, नारायणतीर्थकृत लघुव्याख्या तथा पुरुषोत्तम सरस्वतीकृत बिन्दुसंदीपन, प्रकाशन भारतीय बुक कॉरपोरेशन, दिल्ली, संस्करण 1986

---

[३०] त्रयाणां विश्वादीनां पूर्व पूर्व प्रविलापनेनं तुरीयत्त्व प्रतिपतिः माण्डूक्यकारिका भाष्य, 12

7. सिद्धान्तबिन्दु, नारायणतीर्थ कृत लघु व्याख्या एवं न्याय रत्नावली सहित, मधुसूदन सरस्वती, सम्पादक-त्र्यम्बकराम शास्त्री, काशी संस्कृत सीरीज, 1928
8. हठप्रयोगदीपिका, मेहरचन्द, व्याख्याकार, बम्बई, श्री वेंकटेश्वर स्टीम मुद्रणालय वि. सं, 1960
9. अभिमन्यु, वेदांत विमर्श, परिमल पब्लिकेशन, दिल्ली, संस्करण 1991
10. आंगिरस, रमाकांत, शांकर वेदान्त : एक अनुशीलन, नटराज पब्लिशिंग हाऊस, संस्करण, 1982
11. खरे, प्रदीप कुमार, मधुसूदन सरस्वती का दर्शन, क्लासिकल पब्लिशिंग कंपनी, नई दिल्ली, संस्करण 2000

~~~~~~~~~~
~~~~~~~~~~